

तेषां मध्ये वणिक्पुत्रः सुधीः सागरदत्तवाक्। रात्रिभुक्तिव्रतात्तेन न भुक्तं तद्विषान्नकम् ॥६॥
समालोक्य तदा सोपि तेषां मृत्युं विरक्तवान्। संत्यक्त्वा तद्धनं त्रेधा मुनिर्जातो जगद्धितः ॥७॥
एकेनापि जिनेन्द्रदेवकथिते नोच्चैर्व्रतेन स्वयं ज्ञात्वा संसृतिचेष्टितं च हृदये विद्युच्चलं जीवितम्।
त्यक्त्वा तच्च धनं विशिष्टचरणो ज्ञातो मुनिः शुद्धधीः स श्रीसागरदत्तवाग्गुणनिधिः कुर्यात्सतां मंगलम् ॥८॥

इति कथाकोशे धनाद्भूतस्य सागरदत्तस्य कथा समाप्ता।

४१. धनाद्भ्रमबुद्धिकुबेरदत्त-कथा

श्रीजिनं त्रिजगत्पूज्यं भारतीं भुवनोत्तमाम्। नमस्कृत्य गुरुन् भक्त्या वक्ष्ये संगकथानकम् ॥१॥
देशे मणिवते ख्याते पुरे मणिवताभिधे। राजा मणिवतो नाम्ना तद्राज्ञी पृथिवीमती ॥२॥
तत्पुत्रो मणिचन्द्राख्यः संजातो गुणसंयुतः। शूरो धीरोतिगंभीरो राजविद्याविराजितः ॥३॥
स राजा पूर्वपुण्येन कुर्वन्राज्यं निजेच्छया। संस्थितः श्रीजिनेन्द्रोक्त-धर्मकर्मपरायणः ॥४॥
दानं भक्त्या सुपात्रेषु पूजां श्रीमज्जिनेशनाम्। नित्यं परोपकारं च करोति स्म स भूपतिः ॥५॥
एकदा पृथिवीदेवी कुर्वती केशसंस्कृतिम्। मस्तके स्वपतेः केशं पलितं वीक्ष्य सा ददौ ॥६॥

लगे। रात को जब वे सब खाने को बैठे तो किसी ने भोजन में विष मिला दिया और उसे खाकर सब के सब परलोक सिधार गए। यहाँ तक कि जिसने विष मिलाया था, वह भी भ्रम से उसे खाकर मर गया। उसमें एक सागरदत्त नामक वैश्यपुत्र बच गया। वह इसलिए कि उसे रात्रि में खाने-पीने की प्रतिज्ञा थी। धन के लोभ में फँसने से एक साथ सबको मरा देखकर सागरदत्त को बड़ा वैराग्य हुआ। वह उस धन को वहीं छोड़-छोड़कर चल दिया और एक साधु के पास जाकर आप मुनि बन गया ॥४-७॥

रात्रिभुक्त्यागव्रती सागरदत्त ने संसार की सब लीलाओं को दुःख का कारण और जीवन को बिजली की तरह जानकर पलभर में नाश होने वाला सब धन वहीं पर पड़ा छोड़कर आप एक ऊँचा आचरण का धारक साधु हो गया। वह सागरदत्त मुनि आप सज्जनों का कल्याण करें ॥८॥

४१. धन के लोभ से भ्रम में पड़े कुबेरदत्त की कथा

जिनेन्द्र भगवान् को, जो कि सारे संसार द्वारा पूज्य हैं और सबसे उत्तम गिनी जाने वाली जिनवाणी तथा गुरुओं को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर परिग्रह के सम्बन्ध की कथा लिखी जाती है ॥१॥

मणिवत देश में मणिवत नाम का एक शहर था। उसके राजा का नाम भी मणिवत था। मणिवत की रानी पृथ्वीमति थी। इसके मणिचन्द्र नाम एक पुत्र था। मणिवत विद्वान्, बुद्धिमान् और अच्छा शूरवीर था। राजकाज में उसकी बहुत अच्छी गति थी ॥२-३॥

राजा पुण्योदय से राजकाज योग्यता के साथ चलाते हुए सुख से अपना समय बिताते थे। धर्म पर उनकी पूरी श्रद्धा थी वे सुपात्रों को प्रतिदिन दान देते, भगवान् की पूजा करते और दूसरों की भलाई करने में भरसक यत्न करते। एक दिन रानी पृथ्वीमति महाराज के बालों को सँवार रही थीं कि उनकी

दृष्ट्वा मणिवतो राजा केशं वा यमपाशकम्। त्रिधा वैराग्यमापन्नो जैनतत्त्वविदाम्बरः ॥७॥
 स्वराज्यं मणिचन्द्राय दत्त्वा पुत्राय धीमते। कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणां महास्नपनपूर्वकम् ॥८॥
 दानं दत्त्वा यथायोग्यमर्थिभ्यो विनयान्वितः। जिनदीक्षां समादाय मुनिर्जातो जगद्धितः ॥९॥
 एकदासौ विशुद्धात्मा संस्मरञ्जिनपादयोः। एकाकी विहरन्धीमानुज्जयिन्याः श्मशानके ॥१०॥
 समागत्य स्थितो रात्रौ धीरो मृतकशय्या। ध्यायंश्चित्ते महाशान्त्यै परमात्मानमुत्तमम् ॥११॥
 तदा कापालिकः पापी तत्रागत्य श्मशानके। मृतकद्वयं समानीय मुनेः पार्श्वे सुनिर्घृणः ॥१२॥
 तन्मस्तकत्रयेणाशु कृत्वा चुल्लीं निजेच्छया। तत्र वेतालिकीविद्यासाधनार्थं नरस्य च ॥१३॥
 कपाले चरुकं कर्तुं प्रवृत्तो वह्निना तदा। मुनेस्तस्य नसादाहात्यतिते च कपालके ॥१४॥
 नष्टः कापालिकः सोपि भयाच्चकितमानसः। मुनीन्द्रो मेरुवद्धीरो तथैवोच्चैः स संस्थितः ॥१५॥
 प्रभाते तं मुनिं दृष्ट्वा केनचित्कर्मयोगतः। श्रेष्ठिनो जिनदत्तस्य प्रोक्तं तद्वृत्तकं तदा ॥१६॥
 श्रेष्ठिना तेन तच्छ्रुत्वा गत्वा शीघ्रं श्मशानके। तं विलोक्य मुनिं धीरं हाहाकारं विधाय च ॥१७॥
 समानीय निजं गेहं महायत्नेन धीमता। पृष्ठो वैद्यो मुनेस्तस्य शान्त्यर्थं सोपि संजगौ ॥१८॥
 अहो श्रेष्ठिन्सुधीः सोमशर्मभट्टगृहेस्ति च। लक्षपाकं शुभं तैलं तेन स्यादग्निशान्तिता ॥१९॥

नजर एक सफेद बाल पर पड़ी। रानी ने उसे निकालकर राजा के हाथ में रख दिया। राजा उस सफेद बाल को काल का भेजा दूत समझ कर संसार और विषयभोगों से बड़े विरक्त हो गए। उन्होंने अपने मणिचन्द्र पुत्र को राज्य का सब कारोबार सौंप दिया और आप भगवान् की पूजा, अभिषेक कर तथा याचकों को दान दे जंगल की ओर रवाना हो गए और दीक्षा लेकर तपस्या करने लगे। वे अब दिनों-दिन आत्मा को पवित्र बनाते हुए परमात्म-स्मरण में लीन रहने लगे ॥४-९॥

मणिवत मुनि नाना देशों में धर्मोपदेश करते हुए एक दिन उज्जैन के बाहर श्मशान में आए। रात के समय वे मृतक शय्या द्वारा ध्यान करते हुए शान्ति के लिए परमात्मा का स्मरण-चिन्तन कर रहे थे। इतने में वहाँ एक कापालिक बैताली विद्या साधने के लिए आया। उसे चूल्हा बनाने के लिए तीन मुर्दों की जरूरत पड़ी। सो एक तो उसने मुनि को समझ लिया और दो मुर्दों को वह और घसीट लाया। उन तीनों के सिर पर चूल्हा बनाकर उस पर उसने एक कपाल रखा और आग सुलगाकर कुछ नैवेद्य पकाने लगा। थोड़ी देर बाद जब आग जोर से चेती और मुनि की नसें जलने लगीं तब एकदम मुनि का हाथ ऊपर की ओर उठ जाने से सिर पर का कपाल गिर पड़ा। कापालिक उससे डर कर भागकर खड़ा हुआ। मुनिराज मेरु समान वैसे के वैसे ही अचल बने रहे। सबेरा होने पर किसी आते-जाते मनुष्य ने मुनि की यह दशा देख जिनदत्त को यह हाल सुनाया। जिनदत्त उसी समय दौड़ा-दौड़ा श्मशान में गया। मुनि की दशा देखकर उसे बेहद दुःख हुआ। मुनि को अपने घर पर लाकर उसने एक प्रसिद्ध वैद्य से उनके इलाज के लिए पूछा। वैद्य महाशय ने कहा-सोमशर्मा भट्ट के यहाँ लक्षपाक नाम का बहुत ही अच्छा तैल है, उसे लाकर लगाओ। उससे बहुत जल्दी आराम होगा, आग का जला उससे फौरन आराम होता है। सेठ सोमशर्मा के घर दौड़ा हुआ गया। घर पर

श्रेष्ठिना तत्समाकर्ण्य गत्वा विप्रगृहं तदा। तुंकारी नामतद्भार्या तत्तैलं याचिता सती ॥२०॥
 तथा प्रोक्तं गृहाणैकं भो श्रेष्ठिस्तैलसदृघटं। केचिल्लोकेऽर्थिनां सन्ति दानिनो वा सुरद्रुमाः ॥२१॥
 ततस्तद्वधटमादाय निर्गतो यावदेव सः। भग्नो घटस्ततस्तेन पुनस्तस्या निरूपितम् ॥२२॥
 सा जगाद सुधीरन्यो घटः संगृह्यते त्वया। चित्तं सतां भवेन्नित्यं गंभीरं सागरादपि ॥२३॥
 स्फुटिते च द्वितीयेऽस्मिन्कर्मतस्तृतीयेऽपि च। सा तुंकारी सती प्राह भो श्रेष्ठिन्मा भयं कुरु ॥२४॥
 यावत्ते कार्यसिद्धिः स्यात्तावत्तैलं गृहाण मे। तच्छ्रुत्वा जिनदत्तेन श्रेष्ठिना निजमानसे ॥२५॥
 अस्याः क्षमा महाश्चर्यमद्वितीयात्र दृश्यते। संविचार्येऽति सा पृष्टा भो मातः केन हेतुना ॥२६॥
 कृते महापराधेऽस्मिन् कोपो न क्रियते त्वया। तथा प्रोक्तं मया प्राप्तं भो सुधीः कोपजं फलम् ॥२७॥
 तत्कथं श्रूयतां तात पुरे चानन्दनामनि। विप्रोभूच्छिवशर्माख्यो धनवानृषः पूजितः ॥२८॥
 कमलश्रीः प्रिया पुत्राः शिवभूत्यादयोऽभवन्। अष्टाहं नवमी पुत्री भट्टा नाम्नी मता जनैः ॥२९॥
 रूपलावण्यसौभाग्यमहामानविराजिता। तुंकर्तुं मां समर्थो न विद्यते कोपि भीतितः ॥३०॥

भट्ट महाशय नहीं थे, इसलिए उसने उनकी तुंकारी नाम की स्त्री से तैल के लिए प्रार्थना की। तैल के कई घड़े उसके यहाँ भरे रखे थे। तुंकारी ने उनमें से एक घड़ा ले जाने को जिनदत्त से कहा। जिनदत्त ऊपर जाकर एक घड़ा उठाकर लाने लगा। भाग्य से सीढ़ियाँ उतरते समय पाँव फिसल जाने से घड़ा उसके हाथों से छूट पड़ा। घड़ा फूट गया और तैल सब रेलम-ठेल हो गया। जिनदत्त को इससे बहुत भय हुआ। उसने डरते-डरते घड़े के फूट जाने का हाल तुंकारी से कहा। तब तुंकारी ने दूसरा घड़ा ले आने को कहा। उसे पहले घड़े के फूट जाने का कुछ भी ख्याल नहीं हुआ। सच है-सज्जनों का हृदय समुद्र से भी कहीं अधिक गम्भीर हुआ करता है। जिनदत्त दूसरा घड़ा लेकर आ रहा था। अब की बार तैल से चिकनी जगह पर पाँव पड़ जाने से फिर भी वह फिसल गया और घड़ा फूटकर उसका सब तैल बह गया। इसी तरह तीसरा घड़ा भी फूट गया। अब तो जिनदत्त के देवता कूँच कर गए। भय के मारे वह थर-थर काँपने लगा। उसकी यह दशा देखकर तुंकारी ने उससे कहा कि घबराने और डरने की कोई बात नहीं। तुमने कोई जानकर थोड़े ही फोड़े हैं। तुम किसी तरह की चिन्ता-फिकर मत करो। जब तक तुम्हें जरूरत पड़े तुम प्रसन्नता के साथ तैल ले जाया करो देने से मुझे कोई उजर न होगा। कोई कैसा ही सहनशील क्यों न हो, पर ऐसे मौके पर उसे भी गुस्सा आये बिना नहीं रहता। फिर इस स्त्री में इतनी क्षमा कहाँ से आई? इसका जिनदत्त को बड़ा आश्चर्य हुआ। जिनदत्त ने तुंकारी से पूछा भी, कि माँ मैंने तुम्हारा इतना भारी अपराध किया, उस पर भी तुमको रत्तीभर क्रोध नहीं आया, इसका क्या कारण है? तुंकारी ने कहा-भाई, क्रोध करने का फल जैसा चाहिए वैसा मैं भुगत चुकी हूँ ॥१०-२७॥

इसलिए क्रोध के नाम से ही मेरा जी काँप उठता है। यह सुनकर जिनदत्त का कौतुक और बढ़ा, तब उसने पूछा यह कैसे? तुंकारी कहने लगी-चन्दनपुर में शिवशर्मा ब्राह्मण रहता है। वह धनवान् और राजा का आदरपात्र है। उसकी स्त्री का नाम कमलश्री है। उसके कोई आठ तो पुत्र और

एकदा मे पिता पुर्या दापयामास घोषणाम्। तुंकारं मे सुतां कोपि माकरोत्विति सर्वथा ॥३१॥
 तदा तुंकारिका चेति संजातं मम नामकम्। महामानो भवत्यत्र श्रेयसे नैव देहिनाम् ॥३२॥
 कदाचिन्न करोम्यस्य तुंकारमिति निश्चयात्। सोमशर्मद्विजेनाहं परिणीता कुलक्रमात् ॥३३॥
 अत्रैवोज्जयिनीमध्ये समानीता विभूतिभिः। यावत्स्थिता सुखं गेहे सारसम्पद्विराजिते ॥३४॥
 तावच्चैकं दिने सोमशर्मा मे प्राणवल्लभः। रात्रौ नाट्यकलां दृष्ट्वा दीर्घकाले समागतः ॥३५॥
 द्वारे स्थित्वा जगादोच्चैरुद्घाट्य कपाटकम्। मया तदा प्रकोपेन मौनेनावस्थितं गृहे ॥३६॥
 बृहद्वेला गता याव-त्तावत्तेन क्रुधा मम। तुंकारितं तदा चित्ते कोपेनाहं प्रकम्पिता ॥३७॥
 वह्निज्वालेव मूढात्मा कृत्वा द्वारं निरर्गलम्। त्यक्त्वा गेहं पुरं चापि बहिर्यावद्विनिर्गता ॥३८॥

एक लड़की है। लड़की का नाम भट्टा है और वह मैं ही हूँ। मैं थी बड़ी सुन्दरी, पर मुझमें एक बड़ा दुर्गुण था। वह यह कि मैं अत्यन्त मानिनी थी। मैं बोलने में बड़ी ही तेज थी और इसलिए मेरे भय का सिक्का लोगों के मन पर ऐसा जमा हुआ था कि किसी की हिम्मत मुझे 'तू' कहकर पुकारने की नहीं होती थी। मुझे ऐसी अभिमानी देखकर मेरे पिता ने एक बार शहर में डौंड़ी पिटवा दी कि मेरी बेटी को कोई 'तू' कहकर न पुकारे क्योंकि जहाँ मुझसे किसी ने 'तू' कहा कि मैं उससे लड़ने-झगड़ने को तैयार ही रहा करती थी और फिर जहाँ तक मुझमें शक्ति जोर होता मैं उसकी हजारों पीढ़ियों को एक पलभर में अपने सामने ला खड़ा करती और पिताजी इस लड़ाई-झगड़े से सौ हाथ दूर भागने की कोशिश करते। जो हो, पिताजी ने अच्छा ही काम किया था, पर मेरे छोटे भाग्य से उनका डौंड़ी पिटवाना मेरे लिए बहुत ही बुरा हुआ। उस दिन से मेरा नाम ही 'तुंकारी' पड़ गया और सब ही मुझे इस नाम से पुकार-पुकार कर चिढ़ाने लगे। सच है-अधिक मान भी कभी अच्छा नहीं होता और इसी चिड़ के मारे मुझसे कोई ब्याह करने तक के लिए तैयार न होता था। मेरे भाग्य से इन सोमशर्मा जी ने इस बात की प्रतिज्ञा की कि मैं कभी इसे 'तू' कहकर न पुकारूँगा। तब इनके साथ मेरा ब्याह हो गया। मैं बड़े उत्साह के साथ उज्जैन में लाई गई। सच कहूँगी कि इस घर में आकर मैं बड़े सुख से रही। भगवान् की कृपा से घर सब तरह हरा भरा है। धन सम्पत्ति भी मनमानी है ॥२८-३४॥

पर "पड़ा स्वभाव जाए जीव से" इस कहावत के अनुसार मेरा स्वभाव भी सहज में थोड़े ही मिट जाने वाला था। सो एक दिन की बात है कि मेरे स्वामी नाटक देखने गए। नाटक देखकर आते हुए उन्हें बहुत देर लग गई उनकी इस देरी से मुझे अत्यन्त गुस्सा आया। मैंने निश्चय कर लिया कि आज जो कुछ भी हो, मैं दरवाजा नहीं खोलूँगी और मैं सो गई थोड़ी देर बाद वे आए और दरवाजे पर खड़े रहकर बार-बार मुझे पुकारने लगे। मैं चुप्पी साधे पड़ी रही, पर मैंने किवाड़ न खोले। बाहर से चिल्लाते-चिल्लाते वे थक गए, पर उसका मुझ पर कुछ असर न हुआ। आखिर उन्हें भी बड़ा क्रोध हो आया। क्रोध में आकर वे अपनी प्रतिज्ञा तक भूल बैठे। सो उन्होंने मुझे 'तू' कहकर पुकार लिया। बस, उनका 'तू' कहना था कि मैं सिर से पाँव तक जल उठी और क्रोध से अन्धी बनकर

तावच्चोरैः समालोक्य गृहीत्वाभरणादिकम्। नाम्ना विजयसेनस्य भिल्लस्याहं समर्पिता ॥३९॥
 पल्लिकायां स पापिष्ठः कुर्वन्मे शीलखण्डनम्। वारितो वनदेव्योच्चैः कृत्वा नानोपसर्गकम् ॥४०॥
 भिल्लो भीत्वा तदा सोपि सार्थवाहाय मां ददौ। सार्थवाहोपि मे शीलं कालं कर्तुं क्षमो न हि ॥४१॥
 ततो रुष्टा स पापात्मा नीत्वा मां परतीरकम्। दत्तवान्कृमिरागेण रक्तकम्बलकारिणे ॥४२॥
 तदा तेन जलूकाभिः कष्टतो रक्तकं मम। कम्बलानां निमित्तेन स्वीकृतं भूरिवासरैः ॥४३॥
 महाकोपेन जन्तूनां मादृशानां स्वपापतः। भो श्रेष्ठिन्संभवत्येव दुष्टापच्च पदे पदे ॥४४॥
 उज्जयिन्या महीभर्त्रा तत्र पारसभूपतेः। पार्श्वे सम्प्रेषितो दूतो मद्भ्राता धनदेवभाक् ॥४५॥
 कृतकार्येण तेनाहं दृष्ट्वा भ्रात्रा शुभोदयात्। प्रोक्त्वा तद्भूपतेः सर्व-मत्रानीय च भक्तितः ॥४६॥
 सोमशर्मद्विजस्यास्य भर्तृकस्य समर्पिता। बान्धवास्ते भवन्त्येव ये कष्टे शर्मदायिनः ॥४७॥
 रक्तक्षयात्तदा कष्टं वातेनाहं प्रपीडिता। लक्ष्यपाकेन तैलेन वैद्येन सुखिनी कृता ॥४८॥
 ततो मया मुनीन्द्रेभ्यो धर्मं श्रुत्वा जिनेशिनाम्। सम्यक्त्वं त्रिजगत्पूतं व्रतं चादाय शर्मदम् ॥४९॥

किवाड़ खोलती हुई घर से निकल भागी। मुझे उस समय कुछ न सूझा कि मैं कहाँ जा रही हूँ। मैं शहर के बाहर होकर जंगल की ओर चल धरी। रास्ते में चोरों ने मुझे देख लिया।

उन्होंने मेरे सब गहने-दागी ने और वस्त्र छीन-छानकर विजयसेन नाम के एक भील को सौंप दिया। मुझे खूबसूरत देखकर इस पापी ने मेरा धर्म बिगाड़ना चाहा, पर उस समय मेरे भाग्य से किसी दिव्य स्त्री ने आकर मुझे बचाया, मेरे धर्म की उसने रक्षा की। भील ने उस दिव्य स्त्री से डरकर मुझे एक सेठ के हाथ में सौंप दिया। उसकी नियत भी मुझ पर बिगड़ी। मैंने उसे खूब ही आड़े हाथों लिया। इससे वह मेरा कर तो कुछ न सका, पर गुस्से में आकर उस नीच ने मुझे एक ऐसे मनुष्य के हाथ सौंप दिया जो जीवों के खून से रँगकर कम्बल बनाया करता था। वह मेरे शरीर पर जौंके लगा-लगाकर मेरा रोज-रोज बहुत सा खून निकाल लेता था और उसमें फिर कम्बल को रँग करता था। सच है, एक तो वैसे ही पाप कर्म का उदय और उस पर ऐसा क्रोध, तब उससे मुझ सरीखी हत-भागिनियों को यदि पद-पद पर कष्ट उठाना पड़े तो उसमें आश्चर्य ही क्या? ॥३५-४४॥

इसी समय उज्जैन के राजा ने मेरे भाई को यहाँ के राजा पारस के पास किसी कार्य के लिए भेजा। मेरा भाई अपना काम पूराकर उज्जैन की ओर जा रहा था कि अचानक मेरी उसकी भेंट हो गई मैंने अपने कर्मों पर बड़ा पश्चाताप किया। जब मैंने अपना सब हाल उससे कहा तो उसे भी बहुत दुःख हुआ। उसने मुझे धीरज दिया। इसके बाद वह उसी समय राजा के पास गया और सब हाल उनसे कहकर उस कम्बल बनाने वाले पापी से उसने मेरा पंजा छुड़ाया। वहाँ से लाकर बड़ी आरजू-मित्रत के साथ उसने फिर मुझे अपने स्वामी के घर ला रखा। सच है, सच्चे बन्धु वे ही हैं जो कष्ट के समय काम आवें। यह तो तुम्हें मालूम ही है कि मेरे शरीर का प्रायः खून निकल चुका था। इसी कारण घर पर आते ही मुझे लकवा मार गया। तब वैद्य ने यह लक्षपाक तैल बनाकर मुझे जिलाया।

नैव कस्योपरि श्रेष्ठिन्कर्तव्यः कोपको ध्रुवम्। स्वीचक्रे सद्ब्रतं चेति शर्मकोटिविधायकम् ॥५०॥
 तस्माद्धो तात कुत्रापि कोपो न क्रियते मया। सारं तैलं गृहीत्वोच्चैः समाधानं मुनेः कुरु ॥५१॥
 श्रेष्ठिना तां प्रणम्याशु तैलमादाय वेगतः। गत्वा गृहं मुनेस्तस्य शरीरे भूरि यत्नतः ॥५२॥
 तत्तैलेन दिनैः कैश्चित्कृत्वा सम्मर्दनादिकम्। महाशान्तिं विधायोच्चैः सारपुण्यमुपार्जितम् ॥५३॥
 ततः श्रेष्ठी महाभक्त्या तस्यैव जिनमन्दिरे। जगत्पूज्यो मुनीन्द्रोसौ प्रावृट्योगं गृहीतवान् ॥५४॥
 श्रेष्ठिनानर्घ्यरत्नौघैः पूरितस्ताम्रसद्घटः। सप्तव्यसनसंसक्तस्वपुत्रस्य दुरात्मनः ॥५५॥
 तदा कुबेरदत्तस्य भयात्तत्र जिनालये। निखन्य स्थापितो गूढं मुनेः शयनसन्निधौ ॥५६॥
 तदा कुबेरदत्तोसौ प्रच्छन्नं पापमण्डितः। तत्सर्वं पश्यतिस्मोच्चैश्चेष्टितं स्वपितुः कुधीः ॥५७॥
 एकदा तेन पुत्रेण तस्मादुत्खन्य वेगतः। प्रासादं प्रांगणे सोपि निखन्य स्थापितो घटः ॥५८॥
 मुनिर्विशुद्धचारित्रो जानन्यश्यन्नपि ध्रुवम्। तदा मध्यस्थभावेन संस्थितो मेरुवत्तराम् ॥५९॥
 पूर्णयोगे तु योगीन्द्रः पृष्ठा तं श्रेष्ठिनं सुखम्। विहाराय विनिर्गत्य स्थितो ध्याने पुराद्बहिः ॥६०॥

इसके बाद मैंने एक वीतरागी साधु द्वारा धर्मोपदेश सुनकर सर्वश्रेष्ठ और सुख देने वाला सम्यक्त्व व्रत ग्रहण किया और साथ ही यह प्रतिज्ञा की कि आज से मैं किसी पर क्रोध नहीं करूँगी। यही कारण है कि मैं अब किसी पर क्रोध नहीं करती। अब आप जाइए और इस तैल द्वारा मुनिराज की सेवा कीजिए। अधिक देरी करना उचित नहीं है ॥४५-५१॥

जिनदत्त भट्टारक को नमस्कार कर घर गया और तेल की मालिश वगैरह से बड़ी सावधानी के साथ मुनि की सेवा करने लगा। कुछ दिन तक बराबर मालिश करते रहने से आराम हो गया। सेठ ने भी अपनी इस सेवा भक्ति द्वारा बहुत पुण्यबंध किया। चौमासा आ गया था इसलिए मुनिराज ने कहीं अन्यत्र जाना ठीक न समझ यहीं जिनदत्त सेठ के जिनमंदिर में वर्षायोग ले लिया और यहीं वे रहने लगे ॥५२-५५॥

जिनदत्त का एक लड़का था, नाम इसका कुबेरदत्त था। इसका चाल-चलन अच्छा न देखकर जिनदत्त इस के डर से कीमती रत्नों का भरा अपना एक घड़ा जहाँ मुनि सोया करते थे वहाँ खोद कर गाड़ दिया। जिनदत्त ने यह कार्य किया तो था बड़ी दुपका-चोरी से, पर कुबेरदत्त को इसका पता पड़ गया। उसने अपने पिता का सब कर्म देख लिया और मौका पाकर वहाँ से घड़े को निकाल मंदिर के आँगन में दूसरी जगह गाड़ दिया। कुबेरदत्त को ऐसा करते मुनि ने देख लिया था परन्तु तब भी वह चुपचाप रहे और उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा और कहते भी कहाँ से जब कि उनका यह मार्ग ही नहीं है ॥५६-५७॥

जब योग पूरा हुआ तब मुनिराज जिनदत्त को सुख-साता पूछकर वहाँ से बिहार कर गए। शहर बाहर जाकर वे ध्यान करने बैठे। इधर मुनिराज के चले जाने के बाद सेठ ने वह रत्नों का घड़ा घर ले जाने के लिए जमीन खोद कर देखा तो वहाँ घड़ा नहीं। घड़े को एकाएक गायब हो जाने का उसे बड़ा अचंभा हुआ और साथ ही उसका मन व्याकुल भी हुआ। उसने सोचा कि घड़े का हाल

श्रेष्ठी कुम्भमनालोक्य संजातो व्यग्रमानसः। तं जानाति मुनिश्चैव नान्यः कोपीति चेतसि ॥६१॥
 संविचार्य मुनेः पार्श्वं गत्वा देव मम ध्रुवम्। त्वां विना न रतिश्चित्ते तस्मादागच्छ भो पुरम् ॥६२॥
 इत्यादि मायया पश्चात्तं समानीय सन्मुनिम्। पृच्छति स्म मुने ब्रूहि काञ्चिद्धर्मकथामिति ॥६३॥
 तच्छ्रुत्वा स मुनिः प्राह भो श्रेष्ठिंस्त्वं महानपि। चिरश्रावकतो दिव्यं कथयात्र कथानकम् ॥६४॥
 ततोऽसौ जिनदत्ताख्यः श्रेष्ठी स्वाभिमतार्थकम्। सूचयन्समुवाचैवं ख्याते पद्मरथे पुरे ॥६५॥
 वसुपालो महाराजस्तेनायोध्यापतिं प्रति। जितशत्रुं द्रुतं दूतः प्रेषितः कार्यहेतवे ॥६६॥
 स दूतस्तु महाटव्यां तृषितो मूर्च्छयान्वितः। वृक्षाधः पतितः कष्टं गतप्राणधनोऽथवा ॥६७॥
 दूतं कण्ठगतप्राणं तमालोक्त्यैकवानरः। निमज्ज सरसि स्वच्छे तत्रागत्य दयापरः ॥६८॥
 तस्योपरि स्वकीयं च संविधूय शरीरकम्। अग्रे भूत्वा जलं तस्य दर्शयामास निर्मलम् ॥६९॥
 सोपि पापी पयः पीत्वा हत्वा तं वानरं पुनः। तच्चर्ममस्त्रिकां कृत्वा ततो गमनहेतवे ॥७०॥
 तोयमादाय दुष्टात्मा निर्गतो धर्मवर्जितः। किं स्वामिंस्तस्य दूतस्य युक्तं मर्कटमारणम् ॥७१॥

केवल मुनि ही जानते थे, फिर बड़े अचंभे की बात है कि उनके रहते यहाँ से घड़ा गायब हो जाए? उसे घड़ा गायब करने का मुनि पर कुछ सन्देह हुआ। तब वह मुनि के पास गया और उनसे उसने प्रार्थना की कि प्रभो, आप पर मेरा बड़ा ही प्रेम है, आप जब से चले आए हैं तब से मुझे सुहाता ही नहीं, इसलिए चलकर आप कुछ दिनों तक और वहीं ठहरें तो बड़ी कृपा हो। इस प्रकार मायाचारी से जिनदत्त मुनिराज को अपने मन्दिर पर लौटा लाया। इसके बाद उसने कहा, स्वामी, कोई ऐसी धर्म-कथा सुनाए, जिससे मनोरंजन हो। तब मुनि बोले-हम तो रोज ही सुनाया करते हैं, आज तुम ही कोई ऐसी कथा कहो। तुम्हें इतने दिन शास्त्र पढ़ते हो गए, देखें तुम्हें उसका सार कैसा याद रहता है? तब जिनदत्त अपने भीतरी कपट-भावों को प्रकट करने के लिए एक ऐसी ही कथा सुनाने लगा। वह बोला- ॥५८-६४॥

एक दिन पद्मरथपुर के राजा वसुपाल ने अयोध्या के महाराज जितशत्रु के पास किसी काम के लिए अपना एक दूत भेजा। एक तो गर्मी का समय और ऊपर से चलने की थकावट सो इसे बड़े जोर की प्यास लग आई पानी इसे कहीं नहीं मिला। आते-आते यह एक घने वन में आकर वृक्ष के नीचे गिर पड़ा। इसके प्राण कण्ठगत हो गए। इसको यह दशा देखकर एक बन्दर दौड़ा-दौड़ा तालाब पर गया और उसमें डूबकर यह उस वृक्ष के नीचे पड़े पथिक के पास आया। आते ही इसने अपने शरीर को उस पर झिड़का दिया। जब जल उस पर गिरा और उसकी आँखें खुली तब बन्दर आगे होकर उसे इशारे से तालाब के पास ले गया। जल पीकर इसे बहुत शान्ति मिली। अब इसे आगे के लिए जल की चिन्ता हुई पर इसके पास कोई बरतन वगैरह न होने से यह जल ले जा नहीं सकता था। तब इसे एक युक्ति सूझी। इसने उस बेचारे जीवदान देने वाले बन्दर को बन्दूक से मारकर उसके चमड़े की थैली बनाई और उसमें पानी भर चल दिया। अच्छा प्रभो, अब आप बतलाइए कि उस

तदाकर्ण्य मुनीन्द्रोसौ प्रोक्त्वा युक्तं न तद्भुवि। निर्दोषत्वं स्वकीयं च सूचयन्सत्कथां जगौ ॥७२॥
 कौशाम्बीपत्तने विप्रः शिवशर्माभिधानकः। ब्राह्मणी कपिला तस्य संजाता पुत्रवर्जिता ॥७३॥
 एकदा शिवशर्मासौ दृष्ट्वाटव्यां द्विजोत्तमः। पिल्लकं नकुलस्योच्चैः समानीय स्वयोषितः ॥७४॥
 इमं पुत्रं गृहाणेति कपिलायाः समर्पयत्। किं करोति न मोहान्धः प्राणी तत्त्वपराङ्मुखः ॥७५॥
 ततोसौ पालितः सौख्यं शिक्षितो गृहकर्मकम्। करोति नकुलः किञ्चित्स्वशक्त्या प्रेषणं तदा ॥७६॥
 ततश्च कपिला कुक्षौ पुत्रोद्धूतकर्मयोगतः। तं सुप्तं मञ्चके पुत्रं सैकदा कपिला द्रुतम् ॥७७॥
 नकुलस्य समर्प्योच्चैस्तण्डुलान्ब्रण्डितुं गता। तदा सर्पेण पुत्रोसौ भक्षितो मृत्युमाप्तवान् ॥७८॥
 कोपतो नकुलः सोपि हत्वा सर्पं सुदारुणम्। रक्तलिप्तमुखः पश्चात्संप्राप्तः कपिलान्तिकम् ॥७९॥
 अनेन मारितः पुत्रः इत्याशंक्य स्वमानसे। मारितो नकुलः कष्टं ब्राह्मण्या मुशलेन सः ॥८०॥
 पश्चात्स्वगेहमागत्य मृतं दृष्ट्वा भुजंगमम्। पश्चातापस्तया चक्रे धिङ्मूढानां विचेष्टितम् ॥८१॥

नीच, निर्दयी, अधर्मी को अपने उपकारी बन्दर को मार डालना क्या उचित था? मुनि बोले तुम ठीक कहते हो। उस दूत का यह अत्यन्त कृतघ्नता भरा नीच काम था। इसके बाद अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए मुनिराज ने भी एक कथा कहना आरम्भ किया। वे कहने लगे— ॥६५-७२॥

कौशाम्बी में किसी समय एक शिवशर्मा ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम कपिला था। इसके कोई लड़का नहीं था। एक दिन शिवशर्मा किसी दूसरे गाँव से अपने शहर की ओर लौट रहा था। रास्ते में एक जंगल में उसने एक नेवला के बच्चे को देखा। शिवशर्मा ने उसे घर उठा लाकर अपनी प्रिया से कहा—ब्राह्मणी जी आज मैं तुम्हारे लिए एक लड़का लाया हूँ। यह कहकर उसने नेवले को कपिला की गोद में रख दिया। सच है—मोह से अन्धे हुए मनुष्य क्या नहीं करते? ब्राह्मणी ने उसे ले लिया और पाल-पोस कर उसे कुछ सिखा-विखा भी दिया। नेवले में जितना ज्ञान और जितनी शक्ति थी वह उसके अनुसार ब्राह्मणी का बताये कुछ काम भी कर दिया करता था ॥७३-७६॥

भाग्य से अब ब्राह्मणी के भी एक पुत्र हो गया। सो एक दिन ब्राह्मणी बच्चे को पालने में सुलाकर आप धान खाँडने को चली गई और जाते समय पुत्ररक्षा का भार वह नेवले को सौंपती गई इतने में एक सर्प ने आकर इस बच्चे को काट लिया बच्चा मर गया। क्रोध में आकर नेवले ने सर्प के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इसके बाद वह खून भरे मुँह से ही कपिला के पास गया। कपिला उसे खून से लथ-पथ भरा देखकर काँप गई उसने समझा कि इसने मेरे बच्चे को खा लिया। उसे अत्यन्त क्रोध आया। क्रोध के वेग में उसने न कुछ सोचा-विचारा और न जाकर देखा ही कि असल में बात क्या है किन्तु एक साथ ही पास में पड़े हुए मूसले को उठा कर नेवले पर दे मारा। नेवला तड़फड़ा कर मर गया। अब वह दौड़ी हुई बच्चे के पास गई देखती है तो वहाँ एक काला भुजंग सर्प मरा हुआ पड़ा है। फिर उसे बहुत पछतावा हुआ। ऐसे मूर्ख को धिक्कार है जो बिना विचारे जल्दी में आकर हर एक काम कर बैठते हैं। अच्छा सेठ महाशय, कहिए तो सर्प के अपराध पर बेचारे नेवले को इस प्रकार

भो श्रेष्ठिन्सर्पदोषेण किं तस्या विप्रयोषितः। युक्तं निरपराधस्य नकुलस्यैव मारणम् ॥८२॥
 न युक्तमिति भो देव श्रेष्ठी प्राह कथानकम्। वाराणस्यां महाराजो जितशत्रुर्विचक्षणः ॥८३॥
 तद्वैद्यो धनदत्ताख्यो धनदत्ता प्रियाभवत्। तयोर्धनादिमित्राख्यधनचन्द्रौ सुतौ मतौ ॥८४॥
 पठितौ न भिषक्शास्त्रं मृते वैद्ये स्वकर्मतः। तज्जीवनं तदान्यस्मै ददौ वैद्याय भूपतिः ॥८५॥
 वैद्यपुत्रौ तु चम्पायाः शिवभूतिभिषग्वरम्। नत्वा वैद्यमहाशास्त्रं ज्ञात्वा व्याघुटितौ पुनः ॥८६॥
 ततोऽटव्यां समालोक्य व्याघ्रं चक्षुःप्रपीडितम्। ज्येष्ठेन वारितश्चापि धनचन्द्रो लघुर्भिषक् ॥८७॥
 औषधं नेत्रयोस्तस्य परीक्षार्थं ददौ मुदा। नीरोगेण तदा तेन लघुरेव प्रभक्षितः ॥८८॥
 किं मुने पापिनस्तस्य युक्तं वैद्यप्रभक्षणम्। इत्यादि श्रेष्ठिनो वाक्यं समाकर्ण्य सकारणम् ॥८९॥
 मुनिः प्राह विशुद्धात्मा शृणु त्वं भो वणिग्वर। चम्पायां सोमशर्माख्यो ब्राह्मणोऽस्य प्रिया द्वयम् ॥९०॥
 सोमिल्या सोमशर्मा च सोमिल्यायाः सुतोभवत्। तत्रैव पत्तने चास्ति भद्राख्यो वृषभोत्तमः ॥९१॥
 गृहे गृहे पशुः सोपि ग्रासं च लभते तृणम्। शान्तत्वात्कस्यचिन्नैव स बाधां कुरुते कदा ॥९२॥
 वन्ध्या सा सोमशर्मा च ब्राह्मणी दुष्टमानसा। सपत्नी पुत्रकं हत्वाऽऽरोपयद्भद्रशृङ्गके ॥९३॥

निर्दयता से मार देना ब्राह्मणी को योग्य था क्या? जिनदत्त ने कहा—नहीं। यह उसकी बड़ी गलती हुई। यह कहकर उसने फिर एक कथा कहना आरम्भ की— ॥७७-८२॥

बनारस के राजा जितशत्रु के यहाँ धनदत्त राज्यवैद्य था। इसकी स्त्री का नाम धनदत्ता था। वैद्य महाशय के धनमित्र और धनचन्द्र नाम के दो लड़के थे। लाड़-प्यार में रहकर इन्होंने अपनी कुलविद्या भी न पढ़ पाई कुछ दिनों बाद वैद्यराज काल कर गए। राजा ने दोनों भाइयों को मूर्ख देख इनके पिता की जीविका पर किसी दूसरे को नियुक्त कर दिया। तब इनकी बुद्धि ठिकाने आई ये दोनों भाई अब वैद्यशास्त्र पढ़ने की इच्छा से चम्पापुरी में शिवभूति वैद्य के पास गए। इन्होंने वैद्य से अपनी सब हालत कहकर उनसे वैद्यक पढ़ने की इच्छा जाहिर की। शिवभूति बड़ा दयावान् और परोपकारी था, इसलिए उसने इन दोनों भाइयों को अपने ही पास रखकर पढ़ाया और कुछ ही वर्षों में इन्हें अच्छा होशियार कर दिया। दोनों भाई गुरु महाशय के अत्यन्त कृतज्ञ होकर बनारस की ओर रवाना हुए। रास्ते में आते हुए इन्होंने जंगल में आँख की पीड़ा से दुःखी एक सिंह को देखा। धनचन्द्र को उस पर दया आई अपने बड़े भाई के बहुत कुछ मना करने पर भी धनचन्द्र ने सिंह की आँखों का इलाज किया। उससे सिंह को आराम हो गया। आँख खोलते ही उसने धनचन्द्र को अपने पास खड़ा पाया। वह अपने जन्म स्वभाव को न छोड़कर क्रूरता के साथ उसे खा गया। मुनिराज उस दुष्ट सिंह को बेचारे वैद्य को खा जाना क्या अच्छा काम हुआ? मुनि ने 'नहीं' कहकर एक और कथा कहना शुरू की ॥८३-८९॥

चम्पापुरी में सोमशर्मा ब्राह्मण की दो स्त्रियाँ थी। एक का नाम सोमिल्या और दूसरी का सोमशर्मा था। सोमिल्या बाँझ थी और सोमशर्मा के एक लड़का था। यहीं एक बैल रहता था। लोग उसे 'भद्र' नाम से बुलाया करते थे। बेचारा बड़ा सीधा था। कभी किसी को मारता नहीं था। वह सबके घर पर घूमा-फिरा करता था। उसे इस तरह जहाँ थोड़ी बहुत घास खाने को मिलती वह उसे

अनेन मारितो बालो विप्रघातीति पत्तने। त्यक्तः सर्वजनैर्भद्रवृषोऽयं क्षुत्प्रपीडितः ॥१४॥
 प्रवेशं लभते नैव कदा क्वापि सुदुःखितः। एकदा जिनदत्ताख्यश्रेष्ठिनो वल्लभा प्रिया ॥१५॥
 संजाते परगोधोरुदोषे सा चात्मशुद्धये। कर्तुंकामोज्ज्वलद्विव्यं संस्थिता जनसंगमे ॥१६॥
 तदा प्रस्तावमासाद्य वृषोऽयं तप्तफालकम्। संजग्राह सुखेनादु निर्दोषो भणितो जनैः ॥१७॥
 किं भो श्रेष्ठिन्वृथा तस्य जनानां मूढचेतसाम्। दोषं निरपराधस्य दातुं युक्तं भवेद्भुवि ॥१८॥
 जिनदत्तो जगादैवं गंगातीरे मनोहरे। गर्तायां पतितः कष्टं हस्तिबालः कदाचन ॥१९॥
 तापसो विश्वभूतिस्तु तं विलोक्य तदा द्रुतम्। नीत्वा स्वपल्लिकायां च पोषयामास यत्नतः ॥२०॥
 कैश्चिद्विनैस्ततो सोऽपि संजातः सुमहान् गजः। तच्छ्रुत्वा श्रेणिकेनोच्चैर्गृहीतस्तापसात्सुखम् ॥२१॥
 बन्धनाङ्कुशघातादिकष्टं दृष्ट्वा द्विपोऽपि सः। भक्त्वा स्तंभं समायातस्तदा तापससन्निधौ ॥२२॥
 तत्पृष्ठतः समायाता राजकीयनृणां पुनः। तेषां समर्प्यमानेन सम्बोध्य मधुरैः स्वनैः ॥२३॥
 पापिना हस्तिना तेन तापसः सोऽपि मारितः। युक्तं किं भो मुनेस्तस्य महातापसमारणम् ॥२४॥

खाकर रह जाता था। एक दिन उस बाँझ पापिनी ने डाह के मारे अपनी सौत के बच्चे को निर्दयता से मार कर उसका अपराध बेचारे बैल पर लगा दिया। उसे ब्राह्मण बालक का मारने वाला समझ कर सब लोगों ने घास खिलाना छोड़ दिया और शहर से निकाल बाहर कर दिया। बेचारा भूख-प्यास के मारे बड़ा दुःख पाने लगा। बहुत ही दुबला पतला हो गया। पर तब भी किसी ने उसे शहर के भीतर नहीं घुसने दिया। एक दिन जिनदत्त सेठ की स्त्री पर व्यभिचार का अपराध लगा। वह अपनी निर्दोषता बतलाने के लिए चौराहे पर जाकर खड़ी हुई, जहाँ बहुत से मनुष्य इकट्ठे हो रहे थे उसने कोई भयंकर दिव्य लेने के इरादे से एक लोहे के टुकड़े को अग्नि में खूब तपाकर लाल सुर्ख किया। इस मौके को अपने लिए बहुत अच्छा समझ उस बैल ने झट वहाँ पहुँच कर जलते हुए उस लोहे के टुकड़े को मुँह से उठा लिया। उसका यह भयंकर दृश्य देखकर सब लोगों ने उसे निर्दोष समझ लिया। अच्छा सेठ महाशय, बतलाइए तो क्या उन मूर्ख लोगों को बिना समझे-बूझे एक निरपराध पशु पर दोष लगाना ठीक था क्या? जिनदत्त ने 'नहीं' कहकर फिर एक कथा छेड़ी ॥२०-२८॥

वह बोला—“गंगा के किनारे कीचड़ में एक बार एक हाथी का बच्चा फँस गया। विश्वभूति तापस ने उसे तड़फते हुए देखा। वह कीचड़ से उस हाथी के बच्चे को निकालकर अपने आश्रम में लिवा ले आया। उसने उसे बड़ी सावधानी के साथ पाला-पोसा भी। धीरे-धीरे वह बड़ा होकर एक महान् हाथी के रूप में आ गया। श्रेणिक ने इसकी प्रशंसा सुनकर इसे अपने यहाँ रख लिया। हाथी जब तक तापस के यहाँ रहा तब तक बड़ी स्वतंत्रता से रहा। वहाँ इसे कभी अंकुश वगैरह का कष्ट नहीं सहना पड़ा। पर जब यह श्रेणिक के यहाँ पहुँचा तबसे इसे बन्धन, अंकुश आदि का बहुत कष्ट सहना पड़ता था। इस दुःख के मारे एक दिन यह सांकल तोड़-ताड़ कर तापस के आश्रम में भाग आया। इसके पीछे-पीछे राजा के नौकर भी इसे पकड़ने को आए। तापसी मीठे-मीठे शब्दों से हाथी को समझा कर उसे नौकरों के सुपुर्द करने लगा। हाथी को इससे अत्यन्त गुस्सा आया। सो इसने उस

ततो मुनिः कथां प्राह हस्तिनागपुरे शुभे। पूर्वस्यां दिशि भात्युच्चैर्विश्वसेनेन कारितम् ॥१०५॥
 भूभुजा सहकाराणां वनं तत्रैकदा पुरा। सौलिका सर्पमादाय स्थिता चाग्नतरूपरि ॥१०६॥
 तदा सर्पविषेणाशु पक्वमेकं फलं च तत्। गृहीत्वा वनपालोपि दर्शयामास भूपतेः ॥१०७॥
 स्वराज्ञ्यै धर्मसेनायै ददौ राजा च तत्फलम्। तद्भक्षणात्तदा सापि राज्ञी प्राप्ता यमालयम् ॥१०८॥
 रुष्टो राजा ततः सर्व-तदुद्यानस्य खण्डनम्। कारयामास भो श्रेष्ठिन्तत्किं युक्तं महीपते ॥१०९॥
 नैव युक्तमिति प्रोक्त्वा ततः श्रेष्ठी कथां जगौ। कश्चिन्नरो महाटव्यां गच्छन्सिंहं विलोक्य च ॥११०॥
 शीघ्रं सिंहभयान्नघ्नाऽऽसन्नपल्लीमहाद्रुमम्। समारुह्य स्थितः सौख्यं ततः सिंहे गते सति ॥१११॥
 अवतीर्य तरोर्मार्गे गच्छता तेन पापिना। तदान्वेषयतां काष्ठं महद्भूमिपतेर्नृणाम् ॥११२॥
 सारभेरीनिमित्तं च दर्शितः सोपि पादपः। तैस्तु संखंडितो वृक्षः सुच्छायः सुमनोहरः ॥११३॥
 रक्षाविधायिनस्तस्य सुजनस्येव सत्तरोः। तत्किं कारयितुं युक्तं भो मुने तस्य पापिनः ॥११४॥
 तच्छ्रुत्वा मुनिनाथोसौ संजगाद कथानकम्। कौशीम्बीपत्तेन राजा गन्धर्वानीकं सज्जकः ॥११५॥
 स्वर्णकारोभवत्तत्र सज्जातिः पत्तने तराम्। नामतोङ्गारदेवोसौ रत्नसंस्कारकोविदः ॥११६॥

बेचारे तापस की ही जान ले ली। तो क्या मुनिराज, हाथी को यह उचित था कि वह अपने को बचाने वाले को ही मार डाले? इसके उत्तर में मुनि 'ना' कहकर और एक कथा कहने लगे। उन्होंने कहा—

हस्तिनागपुर की पूरब दिशा में विश्वसेन राजा का बनाया आमों का एक बगीचा था। उसमें आम खूब लग रहे थे। एक दिन एक चील मरे साँप को चोंच में लिए आम के झाड़ पर बैठ गई उस समय साँप के जहर से एक आम पक गया, पीला-सा पड़ गया। माली ने उस पके फल को ले जाकर राजा को भेंट किया। राजा ने उसे 'प्रेमोपहार' के रूप में अपनी प्रिय रानी धर्मसेना को दिया। रानी उसे खाते ही मर गई राजा को बड़ा गुस्सा आया और उसने एक फल के बदले सारे बगीचे को ही कटवा डाला। मुनिराज ने कहा, तो क्या सेठ महाशय, राजा का यह काम ठीक हुआ ? सेठ ने भी 'ना' कहकर और एक कथा कहना शुरू की ॥११९-११०॥

वह बोला—एक मनुष्य जंगल से चला जा रहा था। रास्ते में वह सिंह को देखकर डर के मारे एक वृक्ष पर चढ़ गया। जब सिंह चला गया, तब यह नीचे उतरा और जाने लगा। रास्ते में इसे राजा के बहुत से आदमी मिले, जो कि भेरी के लिए अच्छे और बड़े झाड़ की तलाश में आये थे। सो इस दुष्ट मनुष्य ने वह वृक्ष इन लोगों को बता दिया, जिस पर चढ़कर कि इसने अपनी जान बचाई थी। राजा के आदमी उस घनी छाया वाले सुन्दर वृक्ष को काटकर ले गये। मुनिराज, जिसने बन्धु की तरह अपनी रक्षा की, मरने से बचाया, उस वृक्ष के लिए इस दुष्ट को ऐसा करना योग्य था क्या? मुनिराज 'नहीं' कहकर और एक कथा कही ॥१११-११४॥

वे बोले—गन्धर्वसेन राजा की कौशाम्बी नगरी में एक अंगारदेव सुनार रहता था। जाति का यह ऊँच था। यह रत्नों की जड़ई का काम बहुत ही बढ़िया करता था। एक दिन अंगारदेव राजमुकुट के एक बहुमूल्य मणि को उजाल रहा था। इसी समय उसके घर पर मेदज नाम के एक मुनि आहार

एकदा राजकीयोरुमुकुटाग्रहामणिम्। तेनोज्ज्वलयता गेहे समायातो मुनीश्वरः ॥११७॥
 चर्यार्थं संप्रणम्याशु भक्त्या मेदजसंज्ञकः। स्थापितः कर्मशालायां स मुनिस्तु सुखं स्थितः ॥११८॥
 तत्समीपे मणिं धृत्वा भार्याग्रे स गतो यदा। मणिः संगलितस्तावद्रक्तत्वात्क्रौञ्चपक्षिणा ॥११९॥
 आगतेन ततस्तेन मणिं चापश्यता द्रुतम्। सम्पृष्टोसौ मुनीन्द्रोपि जानन्मौनेन संस्थितः ॥१२०॥
 स्वर्णकारः पुनः प्राह ब्रूहि त्वं भो मणिं मुने। अन्यथा सकुटुम्बस्य संक्षयो मे भविष्यति ॥१२१॥
 तथैव संस्थितः सोपि मुनीन्द्रः करुणापरः। ततो रुष्टेन तेनाशु चोरोयं चेति मानसे ॥१२२॥
 ज्ञात्वा बध्वा महाकाष्ठै-राहतोसौ मुनीश्वरः। धिग्धनं धिक्च मूढत्वं वेत्ति किञ्चिन्न यज्जनः ॥१२३॥
 एककाष्ठे तदा क्रौञ्च-गले लगने लसद्द्युतिः। पद्मरागमणिः सोपि निर्गतो वा यशस्ततिः ॥१२४॥
 तं विलोक्य मणिं सोपि स्वर्णकारः सुदुःखितः। हाहाकारं विधायोच्चैर्लग्नस्तन्मुनिपादयोः ॥१२५॥
 अहो श्रेष्ठिन्यथा तेन जानता मुनिना मणिः। प्रोक्तो नैव दयालुत्वा-तथाहं ते च सद्घटम् ॥१२६॥
 जानन्नपि ध्रुवं धीर कथयामि न संयमी। कुरु त्वं यच्च जानासि साम्प्रतं त्वन्मनोगतम् ॥१२७॥
 तदा कुबेरदत्तोसौ प्रच्छन्नं तन्निशम्य च। समानीय घटं शीघ्रं प्रोल्लसद्रत्नसंभृतम् ॥१२८॥

के लिए आये। वह मुनि को एक ऊँची जगह बैठाकर और उनके सामने उस मणि को रखकर आप भीतर स्त्री के पास चला गया। इधर मणि को मांस के भ्रम से कूँज पक्षी निगल गया। जब सुनार सब विधि ठीक-ठाक कर आया तो देखता है वहाँ मणि नहीं। मणि न देखकर उसके तो होश उड़ गये। उसने मुनिराज से पूछा-मुनिराज, मणि को मैं आपके पास अभी रखकर गया हूँ, इतने में वह कहाँ चला गया? कृपा करके बतलाइए। मुनि चुप रहे। उन्हें चुप्पी साधे देखकर अंगारदेव का उन्हीं पर कुछ शक गया। उसने फिर पूछा-स्वामी, मणि का क्या हुआ? जल्दी कहिये। राजा को मालूम हो जाने से वह मेरा और मेरे बाल-बच्चों तक का बुरा हाल कर डालेगा। मुनि तब भी चुप ही रहे। अब तो अंगारदेव से न रहा गया। क्रोध से उसका चेहरा लाल सुर्ख पड़ गया। उसने जान लिया कि मणि को इसी ने चुराया है। सो मुनि को बाँधकर उसने उन पर लकड़े की मार मारना शुरू की। उन्हें खूब मारा-पीटा सही, पर तब भी मुनि उसी तरह स्थिर बने रहे। ऐसे धन को, ऐसी मूर्खता को धिक्कार है जिससे मनुष्य कुछ भी सोच-समझ नहीं पाता और हर एक काम को जोश में आकर कर डालता है। अंगारदेव मुनि को लकड़े से पीट रहा था तब एक चोट कूँज पक्षी के गले पर भी जाकर लगी। उससे वह मणि बाहर आ गिरा। मणि को देखते ही अंगारदेव आत्मग्लानि, लज्जा और पश्चाताप के मारे अधमरा-सा हो गया। उसे काटो तो खून नहीं। वह मुनि के पाँवों में गिर पड़ा और रो-रोकर उनसे क्षमा माँगने लगा। इतना कह कर मुनिराज बोले-क्यों सेठ महाशय, अब समझे? मेदज मुनि को उस मणि का हाल मालूम था, पर तब भी दया के वश हो उन्होंने पक्षी का मणि निगल जाना न बतलाया। इसलिए कि पक्षी की जान न जाय और न मुनियों का ऐसा मार्ग ही है। इसी तरह मैं भी यद्यपि तुम्हारे घड़े का हाल जानता हूँ, तथापि कह नहीं सकता। इसलिए कि संयमी का यह मार्ग नहीं है कि वे किसी को कष्ट पहुँचावे। अब जैसा तुम जानते हो और जो तुम्हारे

कियन्तमुपसर्गं भो करिष्यति भवान्मुनेः। इत्युक्त्वा कोपतः पित्रे जिनदत्ताय तं ददौ ॥१२९॥
ततोसौ जिनदत्ताख्यः श्रेष्ठी लज्जाभरान्वितः। कुबेरदत्तोपि पुत्रः पश्चात्तापं विधाय च ॥१३०॥
नत्वा तं मेरुवद्धीरं मुनीन्द्रं सत्तपोनिधिम्। भक्त्या क्षमापयित्वा च तस्यैव चरणान्तिके ॥१३१॥
त्रिधा वैराग्यमासाद्य जैनीं दीक्षां सुखप्रदाम्। गृहीत्वा तौ मुनी जातौ निजात्मपरतारकौ ॥१३२॥
श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रोक्त-प्रोल्लसद्बोधसिंधवः। सारसम्यक्त्वरत्नाढ्या लसच्छीलोर्मिराजिताः ॥१३३॥
ये ते मुनये नित्यं सुरेन्द्राद्वैः समर्चिताः। अस्माकं वन्दिता भक्त्या शान्तये सन्तु शर्मदाः ॥१३४॥
जातः श्रीमतिमूलसंघतिलके श्रीकुन्दकुन्दाव्यये विद्यानन्दिगुरुप्रपट्टकमलोल्लासप्रदो भास्करः।
श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरु रत्नत्रयालंकृतः। कुर्यात्सूरिमतल्लिको गुणनिधिर्नित्यं सतां मङ्गलम् ॥१३५॥

इति कथाकोशे भट्टारक-श्रीमल्लिभूषण-शिष्य-ब्रह्मनेमिदत्तविरचिते सगभयाधिकारे

मणिवतमुनि-तुंकारी-कथावर्णनायां द्वितीयः परिच्छेदः।

४२. पिण्याकगन्धस्य कथा

प्रणम्य त्रिजगन्नाथं श्रीजिनं सारशर्मदम्। वक्ष्ये पिण्याकगन्धस्य चरित्रं धनलोभिनः ॥१॥
कांपिल्यनगरे राजा नाम्ना रत्नप्रभोभवत्। राज्ञी विद्युत्प्रभा जाता रूपसौभाग्यमण्डिता ॥२॥

मन में हो उसे करो। मुझे उसकी परवा नहीं। घड़े का छुपाने वाला कुबेरदत्त अपने पिता और मुनि का यह परस्पर का कथोपकथन छुपा सुन रहा था। मुनि का अन्तिम निश्चय सुन उसकी उन पर बड़ी भक्ति हो गई वह दौड़ा जाकर झट से घड़े को निकाल लाया और अपने पिता के सामने उसे रखकर जरा गुस्से से बोला-हाँ देखता हूँ आप मुनिराज पर अब कितना उपसर्ग करते हैं? यह देखकर जिनदत्त बड़ा शर्मिन्दा हुआ। उसने अपने भ्रम भरे विचारों पर बड़ा ही पछतावा किया। अन्त में दोनों पिता-पुत्रों ने उन मेरु के समान स्थिर और तप के खजाने मुनिराज के पाँवों में पड़कर अपने अपराध की क्षमा कराई और संसार से उदासीन होकर उन्हीं के पास उन्होंने दीक्षा भी ले ली, जो कि मोक्ष-सुख की देने वाली है। दोनों पिता-पुत्र मुनि होकर अपना कल्याण करने लगे और दूसरों को भी आत्मकल्याण का मार्ग बतलाने लगे। वे साधुस्तन मुझे सुख-शान्ति दें, जो भगवान् के उपदेश किये सम्यग्ज्ञान के उमड़े हुए समुद्र हैं, सम्यक्त्वरूपी स्तनों को धारण किये हैं और पवित्र शील जिसकी लहरें हैं। ऐसे मुनिराजों को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। मूलसंघ के मुख्य चलाने वाले श्रीकुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा में भट्टारक मल्लिभूषण हुए हैं। वे मेरे गुरु हैं, रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धारण किये हैं और गुणों की खान हैं। वे आप लोगों का कल्याण करें ॥११५-१३५॥

४२. पिण्याकगन्ध की कथा

सुख देने वाले और सारे-संसार के प्रभु श्रीजिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर धन लोभी पिण्याकगन्ध की कथा लिखी जाती है ॥१॥

रत्नप्रभ कांपिल्य नगर के राजा थे। उनकी रानी विद्युत्प्रभा थी। वह सुन्दर और गुणवती थी।